किसी एक दिन हमारे पिता गगनचन्द्र पुण्डरीकिणी नगरी को गये वहां स्वयंप्रभ भगवान् से हम दोनों के अगले-पिछले जन्मों की बात पूछी । पिताकी बात सुनकर स्वयंप्रभ महाराज ने हमारे पूर्व और आगेके कुछ भव बतलाये । उसी प्रकरणमें हम दोनों के पूर्वभव के बडे भाई चिन्तागति का नाम आया था । उसे सुनकर पिताजी ने भगवान से पुन: पूछा कि चिन्तागति इस समय कहां उत्पन्न हुआ है ? तब उन्होंने कहा कि इस समय वह सिंहपुर नगर में अपराजिम नाम का राजा हुआ है । इस प्रकार भगवान स्वयंप्रभ के वचन सुनकर हम दोंनो भाई वहां पर दीक्षित हो गये और फिर प्रकार भगवान स्वयंप्रभ के वचन सुनकर हम दोनों भाई वहां पर दीक्षित हो गये और फिर पूर्व जन्मके स्नेह से तुम्हें देखने के लिये आये है । राजन् ! अब तक आपने पूर्व पुण्य के उदय से अनेक भोग भोगे है । एक आज्ञा की तरह आपने अपनेको अजर अमर समझ कर आत्म-हितकी ओर कुछ भी प्रवृत्ती नहीं की है । इसलिये अब आप विषय वासनाओंसे विमुक्त होकर कुछ आत्म-कल्याण की ओर उनका आभार माना । मुनिराज अपना कार्य पूरा कर आकाश मार्ग से विवाह कर गये ।

राजा अपराजित ने भी अपने प्रीतिंकर नाम के पुत्र को राज्य दिया । अष्टन्हिंक पूजा की और अब शेष दिनों में प्रायोपगमन सन्यास धारण कर अच्युतेन्द्र हुआ । वहां पर वह बाईस सागर तक नर-दुर्लभ सुख भोगता रहा । आयु पूर्ण होने पर जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्र में कुरुजांगल देशमे हस्तिनापुर नगर में राजा श्रीचंद्र और रानी श्रीमती के सुप्रतिष्ठित नामका पुत्र हुआ । राजा श्रीचन्द्र ने उसका सुनन्दा नामक कन्या के साथ विवाह कर दिया। जिससे वह तरह तरहह के भोग विलासों से अपने यौवन को सफल करने लगा ।

किसी एक दिन महाराज श्रीचन्द्र ने सुप्रतिष्ठित पुत्र के लिये राज्य देकर सुमंदर नाम के मुनिराज के पास दीक्षा लेली । इधर सुप्रतिष्ठित भी काम, क्रोध, मद, मात्सर्य, लोभ, मोह आदि अन्तरंग तथा बहिरंग आदि शत्रुओं को जीतकर न्याय पूर्वक राज्य करने लगा । उसने किसी समय यशोधर नामक मुनिराज को आहार दिया था । जिससे उसके घर पर पंचाश्चर्य प्रकट हुये थे । एक दिन राजा सुप्रतिष्ठित अपने समस्त परिवार के साथ मकानकी छतपर बैठकर चन्द्रमा की सुन्दर सुषमा देख रहा था । उसी समय आकाश से एक भयंकर उल्कापात हुआ जिससे उसका मन विषयोंसे सहसा विरक्त हो गया । वह संसार की क्षणभंगुरता का विचार करता हुआ विषय लालसाओंसे एक दम सहम गया । उसने उसी समय

अपने सुदृष्टि नामक पुत्र के लिये राज्य देकर किन्ही सुमन्दर नाम के ऋषिराज के पास दीक्षा धारण कर ली । वहां उसने ग्यारह अंगोंका अध्ययन दकिया ओर दर्शन विशुध्दि आदि सोलह कारण भावनाओं का चिन्तवन कर तीर्थकर नाम के पुण्य प्रकृति का बन्ध किया । जब आयुका अन्तिमं समय आया तब वह सन्यास पूर्वक शरीर छोडकर जयन्त नामक अनुत्तर विमान में अहमिन्द्र हुआ वहां उस की आयु तेतीस सागर की थी शरीर एक हाथ ऊंचा था । लेष्या परम शुक्ल थी तेमीस हजार वर्ष बाद आहार लेने की इच्छा होती थी और तेतीस पक्ष बाद श्वोसोच्छास क्रिया होती थी । उसे जन्म से ही अवधिज्ञान था । जिस के बलसे वह नीचे सातवें नरक तक की बत जान लेता था । यही अहमिन्द्र आगे के भव में भगवान नेमिनाथ होकर जगत का कल्याण करेगा । कहां ? सो सुनिये

(२) वर्तमान परिचय

जम्बू द्वीप भरतक्षेत्र के कुशार्थ देशमें एक शौर्यपूर नामका नगर है उस में किसी समय शूरसेन नामका राजा राज्य करता था । यह राजा हरिवंशरू पी आकाशमें सुर्यके समान चमकता था । कुछ समय बाद शूरसेन के शूरवीर नामका पुत्र हुआ । जो सचमुच शूरवीर था । उसने समस्त शत्रु जीते लिये थे उस वीरकी स्त्रीका नाम धारिणी था । उससे उसके अन्धक वृष्णि और नर वृष्णि नामके दो पुत्र हुए । अन्धक वृष्णिकी रानीका नाम सुभद्रा था । उसके काल-क्रमसे १ समुदविजय, २स्तिमितसागर, ३ हिमवान ४ विजय, ५ विद्वान, ६ अचल, ७ धारण ८ पूरण ९ पूरिताच्छीच्छ अभिनन्दन और १० वासुदेव.... ये दश पुत्र तथा कुन्ती और माद्री नाम की दो कन्याएं हुई । समुद्र विजय आदि शुरु के नौ भाईयों के क्रम से शिवादेवी, धृतीश्वरा, स्वयंप्रभा, सुनिता, सीता, प्रियवाक, प्रभावती, कालिंगी और सुप्रभा ये सुन्दरी स्त्रियां थी । वासुदेवने अनेक देशो में बिहार किया था । इसलिये उन्हें अनेक भूमि-गोचरी तथा विद्याधर राजाओंने अपनी कन्याएं भेंट की थी - उसके बहुत सी स्त्रियां थी । उन सबमें देवकी मुख्य थी ।

इन सबकी बहिन कुन्ती और माद्रीका विवाह हस्तिनापुर के कौववंशी राजा पाण्डु के साथ हुआ था। राजा पाण्डु के कुन्ती देवोंसे युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन तथा माद्री देवीसौ नकुल और सहदेव इस तरह पांच पुत्र हुए थे । जोकि राजा पाण्डु की सन्तान होने के कारण पीछे पाण्डव नाम से प्रसिध्द हो गये थे । बहनोईका रिस्ता होनेके करण समुद्र विजय आदि दश भाई वसुदेव के बलराम और कृष्ण नामके दो पुत्र हुए जो बडे ही पराक्रमी थे श्रीकृष्णने अपने अतुल्य पराक्रम से

मथुरा के दुष्ट राजा कंसको मल्ल युध्दमें मार दिया था । जिससे उनकी जिवद्यशा स्त्री विधवा होकर रोती हुई अपने पिता जरासंध के पास राजगृह नगरमें गई उस समय जरासंध का प्रताप समस्त संसारमें फै ला हुआ था । वह तीन खण्डका राजा था। अर्ध्द चक्रवर्ती कहलाता था । पुत्रीका दु:खभरी अवस्था देखकर उसने श्रीकृ ष्ण आदि को मारने के लिये अपन अपराजित नाम के पुत्र को भेजा, पर वसुदेव आदिने युध्दमे तीन सौ छयालीस हराया । अंन्तमें अपराजित होकर अपने लौट गया । फिर कु छ समय बाद जरासंधका दूसरा लडका कालयवन श्रीकृ ष्ण को मारने के लिये आया । उसके पास असंख्य सेना थी । जब समुद्र विजय आदि को इस बात का पता चला तब उन्होंने परस्पर में सलाह की कि अभी श्रीकृ ष्ण की आयु कु छ बडी नही है इसलिये इस समय समर्थ शत्रु से युध्द नहीं करना ही अच्छा है । ऐसा सोचकर वे सब शौर्यपुर से भाग गये और विन्ध्यावटी को पारकर समुद्र के किनारेपर पहुंच गये । इधर कालयवन भी उनकी पीछा करता हुआ जब विन्ध्यावटी में पहुंचा तब वहां समुद्र विजय आदि की कु लदेवता एक बुढियाका रुप बनाकर बैठ गई और विद्या बलसे खूब अग्नि जलाकर हा समुद्र विजय ! ध्हा वसुदेव, हा श्रीकृ ष्णङ आदि कह कहकर विलाप करने लगी । जब कालयवन ने उससे रोने का कारण पूछा तब उसने कहा कि मैं बूढी धाय हूं । हमारे राजा समुद्र विजय आदि दशों भाई श्रीकृ ष्ण आदि पुत्रों तथा समस्त स्त्रियों के साथ शु?के भयसे भागे जा रहे थे सो इस प्रसण्ड अग्नि के बीच में पडकर असमयमें ही मर गये है । अब मैं असहाय होकर उन्हींके लिये रो रही हूं । बुढिया के बचन सुनकर कालयवन हर्षित होता हुआ वापिस लौट गया । अब आगे चलिये-जब राजा समुद्र विजय आदि समुद्र के किनारेपर पहुंचे थे तब वहां रहनेके लिये कोई मकान वगैरह नहीं था इसलिये वे सब आवासों-घरों की चिन्ता में यहां वहां घूम रहे थे । वहींपर बुध्दिमान श्रीकृ ष्णने आठ दिन के उपवास किये और नमके आसनपर बैठकर परमात्मा का ध्यान किया ।

श्रीकृ ष्ण की आराधना से प्रसन्न हुए एक नैगम नामके देवने प्रकट होकर कहा कि अभी तुम्हारे पास एक सुन्दर घोडा आवेगा तुम उसपर सवार होकर समुद्र में बारह योजन तक चले जाना। वहांपर तुम्हारे लिये एक मनोहर नगर बन जायेगा। इतना कहकर वह देव तो अदृश्य हो गया पर उसकी जगहपर कहींसे आकर एक सुन्दर घोडा खडा हो गया ।श्रीकृ ष्ण उसपर सवार होकर समुद्रमें बाहर योजन तक दौडते गये । पुण्य प्रतापसे समुद्रका उतना भाग स्थलमय हो गया । वहीपर इन्द्रकी आज्ञा पाकर कु बेर देवने एक महा मनोहर नगरी की रचना कर दी। उसके बडे बडे

गोपुर देखकर समुद्र विजय आदिने उसका नाम द्वारावती (द्वारीका) रख लिया । राजा समुद्र विजय अपने छोटे भाईयों तथा श्रीकृष्ण आदि पुत्रोंके साथ द्वारीकापुरी में सुखपूर्वक रहने लगे ।

भगवान् नेमिनाथके पूर्वभवोंका वर्णन करते हुए जिस अहमिन्द्र का कथन कर आये है उस के जब वहांकी आयु सिर्फ छह माह की बाकी रह गई तभीसे द्वारिकापुरी में राजा समुद्र विजय और महारानी शिवा देवी के घरपर देवोंने रत्नोंकी वर्षा करनी शुरु कद दी । इन्द्रकी आज्ञा पाकर अनेक देव कुमारियां आ-आकर शिवा देवी की सेवा करने लगी । इन सब बातोंसे अपने घरमें तीर्थकरकी उत्पत्तिका निश्चय कर समस्त हरिवंशी हर्षसे फू ले न समाते थे । कार्तिक शुक्ला षष्ठी के दिन उत्तराषाढ नक्षत्र में पिछले पहर रानी शिवा देवी ने सोलह स्वप्न देखे । उसी समय उक्त अहमिन्द्र ने जयन्त विमान से च्युत होकर उसके गर्भ में प्रवेश किया । सबेरा होते ही रानीने पतिदेव से स्वप्नों का फल पूछा तब उन्होंने कहा कि आज तुम्हारे गर्भ में किसी तीर्थकर के जीवने प्रवेश किया है । नौ माह बाद तुम्हारे गर्भ से एक महा यशस्वी तीर्थकर बालक पैदा होगा । ये सोलह स्वप्न उसीकी विभूति बतला रहे है । राजा समुद्र विजय रानी के लिये स्वप्नोंका फल बतलाकर निवृत्त हुए ही थे । कि इतनेमें वहांपर जय जयकार करते हुए समस्त देव आ पहुंचे । देवोंने गर्भ-कल्याणक का उत्सव किया तथा उत्तमोत्म वस्त्राभूषणों से दम्पतिका खूब सत्कार किया । तदनन्तर नौ माह बाद शिवा देवीने श्रवण शुक्ला षष्ठी के दिन चित्रा नक्षत्र में पुत्र-रत्न उत्पन्न किया । उसी समय सौधर्म आदि इन्द्र तथा समस्त देवोंने मेरु पर्वतपर ले जाकर बालक का जन्माभिषेक किया, इन्द्राणीने अंग पोंछकर बालोचित उत्तम उत्तम आभूषण पहिनाये । इन्द्रने मधुर शब्दों में स्तुति की और स्वामी नेमिनाथ नाम रक्खा । अभिषेक की क्रिया समाप्त कर इन्द्र भगवान् नेमिनाथ क ो द्वारिकापुरी में घर घर अनेक स्थानोंपर चले गये । बालक नेमिनाथका राज परिवारमें उचित रुपसे लालन पालन होने लगा । वे अपनी मधुर चेष्टाओंसे सभीको हर्षित किया करते थे । द्वितीया के चन्द्रमा की तरह वे दिन प्रतिदिन बढने लगे । भगवान् नेमिनाथ के मोक्ष जानेके बाद पांच लाख वर्ष बीत जानेपर स्वामी नेमिनाथ हुए थे । उनकी आयु भी इसमे शामिल है । उनकी आयुका प्रमाण एक हजार वर्षका था । शरीरकी ऊंचाई दश धनुष और वर्ण मयूरकी ग्रीवा के समान नीला था । यद्यपि उस समय द्वारावती-द्वारिका के राजा समुद्र विजय थे पर उनके नेमिनाथ के पहले कोई सन्तान नहीं हुई थी और अवस्था प्रायः ढल चुकी थी

इसलिये उन्होंने राज्य का बहुत सा भार अपने छोटे भाई वसुदेव के लघु पुत्रा श्रीकृष्ण के लिये सौप दिया था । कृष्ण बहुत ही होन हार पुरुष थे इसलिये उनपर समस्त यादवों की नजर लगी हुई थी। सब कोई उन्हें प्यार और श्रध्दाकी दृष्टी से देखते थे । भगवान् नेमिनाथ भी अपने चचेरे बडे भाई श्रीकृष्ण के साथ कम प्रेम नहीं करते थे ।

एक दिन मगध देश के कई वैश्य पुत्रा समुद्र रास्ता भूलकर द्वारिकापुरी में आ पहुंचे । वहांकी विभूति देखकर उन्हें बहुत ही आश्चर्य हुआ । जब वे लोग अपने अपने घर जाने लगे तब साथमें वहां के कुछ बहुमूल्य रत्न लेते गये । वैष्य पुत्रोंने राजनगरमें पहुंचकर वहांके महाराज जरासंधके दर्शन किये ओर वे रत्न भेट किये । जरासंध ने रत्न देखकर उन वैश्य पुत्रोंस पूछा कि आप लोग ये रत्न कहां से लाए है । तब उन्होंने कहा कि महाराज ! हम लोग समुद्र में रास्ता भूल गये थे इसलिये घूमते-घूमते एक नगरी में पहुंचे। पूछनेपर लोंगोने उसका नाम द्वारि का बतलाया था । वह पुरी शोभा से स्वर्गपुरी को जीतती है इस समय उसमें महाराज समुद्रविजय राज्य करते है। वसुदेवके पुत्रा श्रीकृष्णकी तो बात ही न पूछिये। उसका निर्मल यश सागर की तरल तरंगो के साथ अठ-खेलियां करता है । उसकी वीर चेष्टायें समस्त नगरी में प्रसिध्द है। वे एक दुसरे के बिना क्षण भर भी नहीं रहते है । हम उसी नगरी से रत्न लाये है । वैश्य पुत्रों के बचन सुनकर राजा जरासंध के क्रोध का ठिकाना न रहा । अभी तक तो वह समस्त यादव विन्ध्यावटी में जल कर मर गए है, ऐसा निश्चय कर निश्चिन्त था पर आज वैश्य पुत्रों के मुहं ये उनके सद्भाव और वैभव की वार्ता सुनकर प्रतिस्पध्र्दा से उसके ओंठ कांपने लगे । आंखे लाल हो गई और भौंहे टेढी हो गई । उसने वैश्य पुत्रों को बिदा कर सेनापती के लिए उसी समय एक विशाल सेना तैयार करने की आज्ञा दी और कुछ समय बाद सज-धज कर द्वारीका की ओर रवाना हो गया। इधर जब कौतूहली नारदजीने यादवोंके लिये जरासंध के आने का समाचार सुनाया तब श्रीकृष्ण श्री शत्रु को मारने के लिये तैयार हो गये । उन्होंने समुद्रविजय आदिकी अनुमतिसे एक विशाल सेना तैयार करवाई जो शत्रु को बीचमें ही रोकनेके लिये तैयार हो गई । जाते समय श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् नेमिनाथ के पास जाकर बोले कि, जब तक मै शत्रुओं को मारकर वापिस न आ जाऊं तबतक आप राज्य कार्यो की देख भाल करना । बडे भाई कृष्णचन्द्र के बचन नेमिनाथने सहर्ष स्वीकार कर लिये । वापिस जाते समय कृष्णचंन्द्र ने उनसे पूछा भगवन ! इस युध्द यात्रा में मेरी विजय होगी या नहीं। तब

उन्होंने अवधिज्ञान से सोचकर हंस दिया । कृ ष्णचन्द्रभी अपनी सफलता का निश्चय कर हंसी खुशीसे युध्द के लिये आगे बढे। युध्द का समाचार पाते ही हस्तिनापुरसे राजा पाण्डु के पुत्र युधिष्ठर वगैरह भी रणक्षेत्र में शामिल हो गये । कु रु क्षेत्र के मैदान में दोनों ओरकी सेनाओं में घमासान युध्द हुआ । अनेक सैनिक तथा हाथी घोडे वगैरह मारे गये ।

जब लगातार कई दिनों के युध्द से किसी पक्ष की निश्चित विजय नही हुई तब एक दिन कृ ष्णचन्द्र और जरासंध इन दोनों विरो में लडाई हुई । जरासंध जिस शस्त्र का प्रयोग करता था कृ ष्णचन्द्र उसे बिचमें ही काट देते थे । अन्तमें जरासंधने क्रु ध्द हो घुमाकर चक्र चलाया। पर वह प्रदक्षिणा देकर कृ ष्ण के हाथ में आ गया। फिर कृ ष्णने उसी चक्र से जरासंध का संहार किया । ठीक कहा है कि घ्भाग्य फलति सर्वत्रङ सब जगह भाग्यही फलता है । विजयी श्रीकृ ष्णचन्द्र ने चक्ररत्न को आगे कर बडे भाई बलभद्र और असंख्य सेना के साथ भरतक्षेत्र के तीन खण्डोंको. जीतकर द्वारिका नगरी में प्रवेश किया। उस समय उनके स्वागत के लिये फैल गया था। सभी राजा उनका लोहा मानने लगे थे। समुद्रविजय आदिने प्रतापी कृ ष्णचन्द्र का राज्याभिषेक कर उन्हें पूर्ण रुप से राजा बना दिया । कृ ष्णचन्द्र भी अपनी चतुराई और नैतिक बलसे प्रजा का पालन करते थे । बलभद्र भी हमेशा इनका साथ देते थे । श्रीकृ ष्ण के सत्यभामा आदि को लेकर सोलह हजार सुन्दर स्त्रियां थी और बलराम आठ हजार स्त्रियों के अधिपति थे । श्रीकृ ष्ण नारायण और बलराम बलभद्र कहलाते थे। एक दिन राजसभा में श्रीकृ ष्ण, बलभद्र और भगवान नेमिनाथ वगैरह बैठे हुये थे। उसी समय किसी ने पूछा कि इस समय भारतवर्ष में सबसे अधिक बलवान् कौन है ? प्रश्न सुनकर कु छ सभासदोने श्रीकृ ष्ण के लिये ही सबसे बलवान् बतलाया। कृ ष्णचन्द्र भी अपनी बलवत्ता की प्रशंसा सुनकर बहुत प्रसन्न हुयें पर बलभद्र-बलराम ने कहा कि इस समय भगवान नेमिनाथ से बढकर कोई अधिक बलवान नहीं है, उनके शरीर में बचपनसे ही अतुल्य बल है। आप लोग जो वत्स कृ ष्णचंन्द्र के लिये ही सबसे अधिक बलवान् समझ रहे हो यह आप का केवल भ्रम है । क्योंकि, श्रीकृ ष्ण और आप सब मै जो बल है उससे कई गुना अधिक बल इन में विद्यमान है बलराम के वचन सुनकर श्रीकृ ष्ण के पक्षपातियों को बडा बुरा मालूम हुआ । श्रीकृ ष्ण भी अबतक पृथिवीपर अपने से बढकर किसी दूसरे को बलवान नही समझते थे। इसलिये उन्होंने भी बलरामजी के बचनों में सम्मत नहीं थे। तथापि बलराम वगैरह के आग्रह से उन्हें इस कार्य में शामिल होना पडा।

उन्होंने हंसते हुये कहा-यदि कृष्ण मेरे से बलवान है तो सिंहासन परसे हमारे इस पांव को चल विचल कर दें-ऐसा कहकर उन्होंने सिंहासनपर पैर जमा कर रख दिया। श्रीकृष्णने उसे चल विचल करनेकी भारी कोशिश की पर वे सफलता प्राप्त न कर सके इससे उन्हें बहुत ही शर्मिन्दा होना पडा। भगवान् नेमिनाथ का अतुल्य बल देखकर उन्हें शंका हुई कि ये हमसे बलवान् है इसलिये कभी प्रतिकूल होकर हमारे राज्यपर आघात न कर दें । श्रीकृष्ण अपने इस सशंक हृदय को गुप्त ही रक्खे रहे ।

किसी एक समय शरद ऋतु में कृष्ण महाराज अपने समस्त अन्त:पुर के साथ बन में जल क्रिडा करने के लिये गये थे। भगवान् नेमिनाथ भी उनके साथ थे। कृष्णकी सत्यभामा आदि स्त्रियोंने सरोवर में देखकर नेमिनाथ के ऊपर जल उछालते हुये अनेक शृडारमय बचन कहे। नेमिनाथने भी चतुराई पूर्वक उनके व्यृङ्ग भरे वचनों का यथोचित उत्तर दिया । जल-क्रिडा कर चुकेने के बाद भगवान् नेमिनाथ ने सत्यभामा से कहा- तुम मेरी इस गीली धोती को धो डालो तब सत्यभामा क्रोध से भौह टेढी करती हुई बोली कि आप श्रीकृष्ण नहीं है जिन्होंने नाग शय्यापर चढकर लीला मात्र में शारंग नामका धनुष्य चढाया और दिशाओं को गुंजा देनेवाला पांचजन्य शङ्ख बनाया था। यदि धोती धुलाने की शौक हो तो किसी राजकु मारी को क्यों नहीं फंसा लेते ! सत्यभामा के ताना भरे बचन सुनकर नेमिनाथको कुछ क्रोध हो आया। जिससे वे वहां से लौटकर आयुधशाला में गये और सबसे पहले नाग शय्यापर चढाकर शारंग धनुष की प्रत्यंचा चढाई फिर दिशाओं को गुंजा देने वाला शंख बजाया । श्रीकृष्ण कुछ राज्य सम्बन्धी कार्योके कारण इन सबसे पहले ही नगरीमें लौट आये थे। जिस समय नेमिनाथने धनुष चढाकर शंख बजाया था उस समय वे कुसुमचित्र नाम के सभा में बैठे हुये कुछ आवश्यक कार्य देख रहे थे। ज्योंही वहां उनके कानमें शंखकी विशाल आवाज पहुंची त्योंही वे चकित होते हुये आयुधशालाक ो दौडे गये। वहां उन्होंने भगवान् नेमिनाथ को क्रोध युक्त देखकर मीठे शब्दोंमे शांत किया और पासमें किसी पुरुषके उनके क्रोध का कारण पूछा। उसने सत्यभामा आदि के साथ जल-क्रिडा संबंधी सब समाचार कह सुनाये य और बादमें सत्यभामा के मर्मभेदी बचन भी कह दियें । सुनकर श्रीकृष्ण कुछ मुस्कुराये।उन्होंने सत्यभामा के अभिमानपर बहुत कुछ रोष प्रकट किया ओर अपने गुरुजन समुद्रविजय, वासुदेव आदि के सामने नेमिनाथ के विवाह का प्रस्ताव रक्खां जब समुद्रविजय आदिने हर्ष सहित अपनी अपनी सम्मत्रि दे

दी तब श्रीकृष्णने जुनागढ जाकर वहांके उग्रवंशी राज उग्रसेनसे उनकी जयावती रानी से उत्न्न हुई कन्या राजामातीकी कु मार नेमिनाथ के लिये मंगनी की । राजा उग्रसेन ने कृष्णचन्द्र के बचन सहर्ष स्वीकार कर लिये जिससे दोनों ओर विवाह की तैयारियां होने लगी ।

इन्ही दिनों में श्रीकृष्ण के हृदय में पुन: शंका पैदा हुई कि ये नेमिनाथ बहुत ही बलवान है । उस दिन इनसे मुझे हार माननी पडी थी और अभी-अभी जिसपर मेरे सिवाय कोई चढने का सहास नहीं कर सकता उस नाग शय्यापर चढ और धनुष चढाकर तो गजब ही कर दिया । अब इसमें सन्देह नहीं कि ये कु छ दिनों के बाद मेरे राज्यपर अवश्य ही आघात पहुंचावेंगे । इस तरह लोभ-पिशाच के फन्देमें पडकर श्रीकृ ष्णके हृदय में उथल-पुथल मच गई । उन्होंने सोचा कि नेमिनाथ स्वभाव ही से विरक्त पुरुष है - विषय वासनाओं से इनका मन हमेशा ही दुर रहता है । न जाने क्यों इन्होंने विवाह करना स्वीकार कर लिया ? अब भी ये वैराग्यका थोडा-सा कारण पाकर विरक्त हो जावेंगे । इसलिये कोई ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे ये गृह त्यागकर दिगम्बर यति बन जावें । यह सोचकर कृष्णने एक षडयंत्र रचा वह यह है जुनागढ के रास्तें में जहां से बरात जानेक ो थी एक बाड लगवा दी और उस में अनेक शिकारियों से छोटे-बडे पशु-पक्षी पकडवाकर बन्द करवा दिये तथा वहां रक्षक मनुष्योंसे क ह दिया कि जब तुमसे नेमिनाथ इन पशुओंके बन्द करवा दिये तथा वहां रक्षक मनुष्योंसे कह दिया कि जब तुमसे नेमिनाथ इन पशुओंके बन्द करनेका कारण पूछे तब कह देना कि यह जीव आपके विवाहमें क्षत्रिय राजाओं को मांस खिलानेके लिये बन्द किये गये है । कृष्णजी ने अपना यह षडयंत्र बहुत ही गुप्त रक्खा था।

जब श्रावण शुक्ला षष्ठी का दिन आया तब समस्त यादव और उनके सम्बन्धी इकट्ठे होकर झूनागढके लिये रवाना हुए। सबसे आगे भगवान् नेमिनाथ अनेक रत्नमय आभूषण पहिने हुए रथ पर सवार हो चल रहे थे। जब उनका रथ उन पशुओंके घेरे के पास पहुंचा और उनकी करुण ध्वनी नेमिनाथ के कानों में पडी तब उन्होंने पशुओंके रक्षकों से पुछा कि ये पशु किस लिये इकट्ठे किये गये है ? तब पशु रक्षक बोले कि आपके विवाह में मारने के लिये-क्षत्रिय राजाओंको मांस खिलाने के लिये महाराज कृष्ण ने इकट्ठे करवाये है। रक्षकोंके बचन सुनकर नेमिनाथ ने अचम्भे में आकर कहा कि-श्रीकृष्णने ! और मेरे विवाहमें मारने के लिये? तब रक्षकोंने ऊं चे स्वरसे कहा- घ हां महाराजङ !

यह सुनकर वे अपने मन में सोचने लगे कि जो निरीह पशु जंगलों में रहकर तृणके सिवाय कुछ नही खाते, किसी का कुछ भी अपराध नहीं करते-हाय ! स्वार्थी मनुष्य उन्हें भी नहीं छोंडते । नेमिनाथ अवधिज्ञान के द्वारा कृष्ण का कपट जान गये और वहीं उनका लक्ष्येर कहने लगे- हा कृष्ण ! इतना अविश्वास ? मैने कभी तुम्हें अनादर और अविश्वास की दृष्टी से नहीं देखा।जिस राज्यपर कुलक्रम से मेरा अधिकार था मैने उसे सहर्ष आपके हाथों में सौप दिया। फिर भी आप को सन्तोष नही हुआ । हमेशा आप के ह्रदय में यही शंका बनी रही थी कही नेमिनाथ पैतृक राज्यपर अपना कब्जा न कर लें छि:!

यह तो हद हो गई अविश्वास की ! इस जीर्ण तृण के समान तुच्छ राज्यके लिये इन पशुओंको दु:ख देने की क्या अवश्यकता थी ? लो, मै हमेशाके लिये आपका रास्ता निष्कण्टक किये देता हूं उसी समय उन्होंने विषयोंकी भंगुरता का विचारकर दीक्षा लेने का दृढ निश्चय कर लिया । लौकान्तिक देवोंने आकर उनकी स्तुति की और दीक्षा लेने का दृढ निश्चय कर लिया। लौकान्तिक देवोंने आकर उनकी स्तुति कि और दीक्षा लेने के विचारों का समर्थन किया। बस, क्या था ? बरात बीच में ही भंग हो गई।समुद्र विजय, वसुदेव, बलराम,कृष्णचन्द्र आदि कोई भी उन्हें अपने सुदृढ निश्चय से विचलित नहीं कर सके । वहीं पर देवोंने आकर उनका दीक्षाभिषेक किया । और एक महा मनोहर देवकु रु नामकी पालकी बनाई । भगवान् नेमिनाथ पालकी पर सवार होकर रेवतक गिरनार पर्वतपर पहुंचे और वहां पर सहस्त्राम बलमें हजार राजाओंके साथ उसी दिन-श्रावण शुक्ला षष्ठीके दिन चैत्र नक्षत्र में शाम के समय दीक्षीत हो गये । उन्हें दीक्षा लेते ही मन:पर्यय ज्ञान को प्रकट हो गया था। दीक्षा लेते समय भगवान नेमिनाथ की आयु तीन सौ वर्षकी थी ।

इधर जब राजा उग्रसेन के घर नेमिनाथ की दीक्षा के समाचार पहुंचे तब वे बहुत ही दु:खी हुए । उस समय कुमारी राज मती की जो अवस्था हुई थी उसका इस तुच्छ लेखनी के द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता। माता पिताके बहुत समझाने पर भी उसने फिर किसी दूसरे वरसे शादी नहीं की । वह शोक से व्याकुल होकर गिरीनार पर मुनिराज नेमिनाथ के पास पहुंची और अनेक रस भरे वचनों से उनका चित्त विचलित करने का उद्यम करने लगी। परन्तु जैसे प्रलयकी पवन से मेरु पर्वत विचलित नही होता वैसे ही राजमतीके वचनोंसे नेमिनाथ का मन विचलित नहीं हुआ। अन्त में वह उनके वैराग्यमय उपदेश से आर्यिका से आर्यिका हो गई और कठिन तपस्याओं से शरीर को सुखाने लगी ।

भगवान नेमिनाथ ने दिक्षा लेनेके तीन दिन बाद आहार लेने के लिये द्वारी का नगरी में प्रवेश किया । यहां उन्हें वरदत्त महीपतीने भक्तिपूर्वक आहार दिया। पात्रदानसे प्रभावित होकर देवोंने बरदत्तके घर पर पंचाश्चर्य प्रकट किये । इस तरह तपश्चरण करते हुए जब छद्मस्थ अवस्थाके छप्पन दिन निकल गये तब उसी रेवतक (गिरनार) पर्वतपर वंश वृक्ष के नीचे तीन दिन के उपवास की प्रतिज्ञा लेकर विराजमान हुए । वहीं पर उन्हें आसोज शुक्ल पडिवाके दिन सबेरे के समय चित्र नक्षत्रमें केवलज्ञान की प्राप्ति हुई । उसी समय इन्द्रादि देवोंने आकर उनके ज्ञान कल्याणकका उत्सव किया। धनपति कुबेरने इन्द्रकी आज्ञा से समवसरण की रचना की। उसके मध्य में स्थिर होकर उन्होंने उपना छप्पन दिनका मौन भंग किया। दिव्य ध्वनीके द्वारा षट्द्रव्य नवपदार्थ आदिका विशद विवेचन किया । भगवान् को केवलज्ञान प्राप्त हुआ है यह सुनकर कृष्ण, बलभद्र आदि समस्त यादव अपने अपने परिवार के साथ बन्दना के लिये समवसरण में गये । वहां से सब भगवान को भक्तिपूर्वक नमस्कार कर मनुष्यों के कोठेमें बैठे गये । धार्मिक उपदेश सुनने के बाद श्रीकृष्ण तथा उनकी पटरानियोंने अपने अपने पूर्वभवों का वर्णन सुना ।

भगवान नेमिनाथ की सभा में वरदत्त आदि ग्यारह गणधर थे, चार सौ श्रृतकेवली थे, ग्यारह हजार आठ सौ शिक्षक थे, पन्द्रह सौ अवधिज्ञानी थे, नौ सौ मन:पर्यय ज्ञानी थे । इस तरह सब मिलाकर अठारह हजार मुनिराज थे । पक्षी राजमती आदि चालीसं हजार आर्यिकायें थी । एक लाख श्रावक थे। तीन लाख श्राविकायें थी । यक्षी । असंख्यात देव देवियों और संख्यात तिर्थंच थे। इन सबके हाथ उन्होंने अनेक आर्य देशोमें विहार किया और धर्मामृत की वर्षा की। भगवान् नेमिनाथ ने छह सौ निन्यानवे वर्ष नौ महीना और चार दिन तक बिहार किया। फिर बिहार छोडकर आयुके अन्त में पांच सो तेतीस मुनियों के साथ योग निरोधकर उस गिरिनार पर विराजमान हो गये और वही पर शुक्ल ध्यान के द्वारा अघातिया कर्मोका नाशकर आषाढ शुक्ल सप्तमीके दिन नक्षत्रमें रात्रिके प्रारम्भ काल में मुक्त हो गये। देवोंने आकर निर्वाण कल्याणक का उत्सव किया और सिध्दक्षेत्र की पूजा की ।

भगवान पार्श्वनाथ

छप्पय

जन्म जलाधि जयलान, जान जनहंस मानसर।
सर्व इन्द्र मिल आन, आन जिस धरें सीसपर ।।
पर उपकारी बान, बान उत्थप्य कु नय गण ।

गण सरोज बन भान, भान मम मोह तिमिर धन।।
घन वर्ण देह दुख दाह धर, हर्षत हेत मयूर मन।
मन मत मतंग हरिपास जिन, जिन विसरहु छिन जगत जन।।

- भूधरदास

(१) पूर्वभाव परिचय

जम्बू द्वीप के भरतक्षेत्र में एक सुरम्य नामका रमणीय देश है। और उसमें पोदनपुर नगर है। उस नगर में किसी समय अरविन्द नाम का राजा राज्य करता था । अरविन्द बहुत ही गुणवान्, न्यायवान् और प्रजावत्सल्य राजा था। उसी नगर में वेद शास्त्रों का जानने वाला विश्वभूति नामका ब्राम्हण रहता था । वह अपनी अनुन्धरी नाम की ब्राम्हणी से बहुत प्यार करता था । उन दोनों के कमठ और मरुभूति नामके दो पुत्र थे। दोनोंमें कमठ बडा था और मरुभूति छोटा। मरुभूति था तो छोटा पर वह अपने गुणोंसे सबको प्यारा लगता था । कमठ विशेष विद्वान न होनेके साथ साथ सदाचारी भी नहीं था। वह अपने दुर्व्यवहारसे घरके लोगोंको बहुत तंग किया करता था। यदि आचार्य गुणभद्र के शब्दों में कहा जाव तो कमठ का निर्माण विषसे भरा हुआ थाऔर मरुभूति की रचना अमृत से । कमठ स्त्री का नाम वरुणा था और मरुभूति की स्त्री का नाम बसुन्धरी। कमठ और मरुभूति दोंनो राजा अरविन्द के मन्त्री थे इसलिए इन्हें किसी प्रकारका आर्थिक संकट नही उठाना पडता था। औश्र नगरमें इनकी धाक भी खूब जमी हुई थी । समय बीतने पर ब्राह्मण और ब्राह्मणीकी मृत्यु हो गई। जिससे उसकी बंधी हुई गृहस्थी एक चालसे छिन्न-भिन्न हो गई ।

किसी एक दिन राजा अरविन्द ने ब्राह्मणपुत्र मरुभूतिको कार्यवश बाहिर भेजा । घरपर मरुभूति की स्त्री थी । वह बहुत ही सुन्दरी थी । मौका पाकर कमठने उसे अपने षडयन्त्र में फंसाकर उसके साथ दुर्व्यवहार करना चाहा। जब राजा को इस बात का पता चला तब उसने मरुभूति के आने के पहले ही कमठ को देश से बाहिर निकाल दिया कमठ जन्मभूमि को छोडकर यहां वहां घूमता हुआ एक पर्वत के किनारेपर पहुंचा। वहां पर एक साधु पंचाग्नि तप तप रहा था । कमठ भी उसी का शिष्य बन गया और वहीं कहींपर वजनदार शिला को लिये हुए दोनों हाथों को ऊपर उठाकर खडा खडा कठिन तपस्या करने लगा।

इधर जब मरुभूति राजकार्य कर के अपने घर वापिस आया और कमठके देश निकालने के समाचार सुने तब उसका हृदय टंकू टंकू हो गया । मरुभूति सरल

परिणामी और स्नेही पुरुष था । उसने कमठ के अपराध पर कुछ भी विचार नहीं कर उसे वापिस लाने के लिये राजासे प्रार्थना की। राजा अरविन्द ने उसे कमठ को बुलाने की आज्ञा दे दी। मरुभूति राजा की आज्ञा पाकर हर्षित होता हुआ ठीक ऊस स्थानपर पहुंच गया जहांपर उसका बडा भाई तपस्या कर रहा था। मरुभूति क्षमा मांगने के लिये उसके चरणौं में पडकर कहने लगा कि-पूज्य ! आप मेरा अपराध क्षमाकर फिरसे घरपर चलिये। आप के बिना मुझे वहां अच्छा नही लगता। क्षमा के वचन सुनते ही कमठका क्रोध और भी अधिक बढ गया । उसकी आंखे लाल-लाल हो गई । ओंठ कांपने लगे तथा कुछ देर बाद दुष्ट -दृष्ट कहते हुए उसने हाथों की वजनदार शिला मरुभूति के मस्तकपर पटक दी । शिला के गिरते ही मरुभूति के प्राण पखेरु उड गये। कमठ भाई को मरा हुआ देखकर अर्हद्दास करता हुआ किसी दूसरी और चला गया ।

मरते समय मरुभूति के मन में दुर्ध्यान हो गयाथा। इसलिये वह मलय पर्वतपर कुब्जक नामक सल्लकी वनमें वज्रघोष नामका हाथी हुआ। कमठ की स्त्री वरुणा मरकर उसी वनमें हस्तिनी हुई जो कि वज्रघोष के साथ तरह-तरह की क्रिडा करती थी। जब राजा अरविन्द को मरुमति की मृत्यु के समाचार तिले वब वह बहुत दु:खी हुआ । वह सोचने लगा-कि जैसे चन्द्रमा राहु का कुछ भी अनिष्ट नहीं करता फिर भी उसे ग्रस लेता है वैसे ही दुष्ट मनुष्य अनिष्ट नहीं करनेवाने सज्जनोंपर भी अपनी दुष्टता नहीं छोडते । यह संसार प्राय: इन्ही कमठ जैसे खल मनुष्योंसे भरा हुआ है । पर मरुभूति ! च मैं तुम्हे जानता था, खूब जानता था कि तुम्हारा हृदय स्फटिक की तरह निर्मल था तुम्हारे हृदय में हमेशा प्रीति रुपी मन्दाकिनी का पावन प्रवाह बहा करता था । हमारे मना करनेपर भी तुम भाई के स्नेह कौ नहीं तोड सके इसलिये अन्त में मृत्यु को प्राप्त हुए। अहा ! मरुभूति ! ..... इत्यादि बिचार करते हुए उसका मन संसार से विरक्त हो गया जिससे किन्ही तपस्वी के पास उसने जिन दीक्षा धारण कर ली। दीक्षा के कुछ समय बाद अरविन्द मुनिराज अनेक मुनियों के पास उसने जिन दीक्षा धारण कर ली। दीक्षा के कुछ समय बाद अरविन्द मुनिराज अनेक मुनियों के साथ सम्मेद शिखर की यात्रा के लिये गये। चलते चलते वे उसी सल्ल की वन में पहुचे जहां मरुभूतिका जीव वज्रघोष हाथी हुआ था। सामायिक का समय देख कर अरविन्द महाराज वहीं किसी एक शिलापर प्रतिमा योग धारणकर हो गये। जब वज्रघोष की दृष्टि मुनिराजपर पडी तब वह उन्हें मारने के लिये वेगसे दौडा । पर ज्योंही उसने अरविन्द, मुनिराज के वक्षस्थलपर श्रीवत्सका चिह देखा

त्योंही उसे अपने पूर्वभव स्मरण हो आया। उसने उन्हें देखकर पहिचान लिया कि ये हमारे अरविन्द महाराज है । वज्रघोष एक विनीत शिष्य की तरह शांत होकर उन्हींके पास बैठे गया । उन्मत्त हाथी मुनिराज के पास आकर एकदम उपशान्त हो गया-यह देखकर सभी को आश्चर्य हुआ । सामायिक पूर्ण होनेपर अरविन्द मुनिराज ने अवधिज्ञान से उसे मरुभूति का जीव समझकर खूब समझाया जिससे उसने सब बैर भाव छोडकर सम्यगदर्शनके साथ-साथ पांच अणुव्रत धारण कर लिये । अरविन्द महाराज अपने संघ के साथ आगे चले गये।

एक दिन वज्रघोष पानी पीने के लिये किसी भदभदा के पास जा रहा था । पर दुर्भाग्य से वह उसीके किनारेपर बडी भारी कीचडमें फंस गया । उनसे उससे निकलने के लिये बहुत कुछ प्रयत्न किये पर वह निकल नही सका । तापसी कमठ मरकर उसी भदभदा के किनारे कुक्कुट जाति का सांप हुआ था उसने पूर्वभव के बैर से उस प्यारे हाथी को डस लिया वह मरकर अणूव्रतोंके प्रभाव से बारहवे सहस्त्रार स्वर्ग में सोलह सागर की आयु वाला देव हुआं कमठ के जीव कुक्कुट सर्प को भी उसी समय एक वानरी ने मार डाला जिससे वह मरकर धूमप्रभ नाम के पांचवे महा भयंकर नारकी हुआ। वज्रघोषका जीव स्वर्गकी सोलह सागर प्रमाण आयु समाप्तकर जम्बू द्विप के पूर्व विदेह क्षेत्र में पुष्कलावती देश के विजयार्धा पर्वतवर त्रिलोकोत्तम नगर में वहां के राजा विद्युद गति और रानी विद्युन्माला के अग्निदेव नामका पुत्र हुआ । अग्निवेग ने पूर्ण यौवन प्राप्त कर किन्ही समाधिगुप्त नामक मुनिराज के पास जिनदीक्षा धारण कर ली और सर्वतोभद्र आदिक उपवास किये ।

मुनिराज अग्निवेग किसी एक दिन हरि नामक पर्वतकी गुफामें ध्यान लगाये हुए विराजमान थे। इतनेंमें कमठ (कुक्कुट सर्पके जीवने) जो धूमप्रभ नरक से निकलकर उसी गुफा में बडा भारी अजगर हुआ था । मुनिराज को देखकर क्रोधसे उन्हे निगल लिया । मुनिराजसे सन्यास पूर्वक शरीर त्यागकर सोलहवे अच्युत स्वर्गके पुष्कर विमानमें देव पदवी पाई । वहां उसकी आयु बाईस सागर प्रमाण थी । कमठ का जीव अजगर भी मरकर छठवें नरक में नारकी हुआ । स्वर्ग की आयु री कर मरुभूति-बज्रघोष-अग्निदेव का जीव इसी जम्बूद्वीप को पश्चीम विदेह क्षेत्र में पद्यदेश के अश्वपुर नगरमें वहां के राजा वज्रवीर्य और रानी विजय के वज्रनाभि नामका पुत्र उत्पन्न हुआ । वज्रनाभि बडा प्रतापी पुरुष था । उसने अपने प्रताप से छह खण्डो की विजय की थी -वह चक्रवर्ती हो गया। इसलिये उसने क्षेमकर मुनिराज के पास जाकर समीचीन धर्म का स्वरुप सुना और उनके उपदेशसे प्रभावित होकर

पुत्र को राज्य दे दिया और स्वयं उनके चराणों में दिक्षा धारण कर ली । कमठ - अजगर का जीव नरक से निकलकर उसी बनमें एक कुरंग नाम का भील हुआ था। जो बडा ही क्रूर (हिंसक) था ।

एक दिन बज्रनाभि मुनिराज उसी वनमें आतापन योग लगाये हुए बैठे थे कि उस कुरंग भीलने पूर्वभव के संस्कारों से उनपर घोर उपसर्ग किये । मुनिराज समाधि पूर्वक शरीर त्यागकर सुभद्र नामक मध्यम ग्रैवेयक में अहमिन्द्र हुए ।वहां उनकी आयु सत्ताईस सागर की थी । कुरंग भील भी मुनि हत्या के पाप से सातवे नरक में नारकी हुआ । मरुभूतिका जीव अहमिन्द्र, ग्रैवेयक की सत्ताईस सागर प्रमाण आयु पूरी कर इसी जम्बूद्वीप में कौशल देश की अयोध्या नगरीमं इक्ष्वाकुवंशीय राजा बज्रबाहु की प्रभारी पत्नी से आनन्द नाम का पुत्र हुआ । वह बहुत ही सुन्दर था । आनन्दो देखकर सभी को आनन्द होता था । बडा होने पर आनन्द महामण्डलेश्वर राजा हुआ । उसके पुरोहित का नाम स्वामिहित था।

एक दिन पुरोहित स्वामिहित ने राजा के सामने अष्टाहिक ब्रतके माहत्म्य का वर्णन किया जिससे उसने फाल्गुन माह की अष्टान्हिकाओं में एक बडी भारी पूजा करवाई । उसे देखनेके लिये वहां पर एक विपुलमति नामके मुनिराज पधारे। राजाने विनयके साथ उनकी बन्दका की और ऊंचे आसन पर बैठाया । पूजा कार्य समाप्त होने पर राजाने मुनिराजसे पूछा घ कि-महाराज ! जिनेन्द्र देव की अचेतन प्रतिमा जब किसीका हित ओर अहित नहीं कर सकती तब उस की पूजा करनेसे क्या लाभ है ? राजा का प्रश्न सुनकर उन्होंने कहा-यह ठीक है कि जिनराज की जड प्रतिमा किसी को कुछ दे नहीं सकती । पर उसके सौम्य, शान्त आकार के दखने से हृदय में एक बार वीतरागता की लहर उत्पन्न हो उठती है, आत्माके सच्चे स्वरुप का पता चल जाता है और कषाय रिपुओंकी धींगाधांगी एक दम बन्द हो जाती है । उससे बुरे कर्मो की निर्जरा होकर शुभ कर्मोका बन्ध होता है जिनके उदयकालमे प्राणियों को सुख की सामग्री मिलती है । इसलिए प्रथम अवस्था में जिनेद्र की प्रतिमाओं की अर्चा करनी बुरी नहीं है । इतना कहकर उन्होंने राजा आनन्द के सामने अकृत्रिम चैत्यालयों का वर्णन करते हुए आदित्य-सुर्य विमानमें स्थित अकृत्रिम जिन बिम्बोंका वर्णन किया । जिसे सुनकर समस्त जनता अत्यन्त हर्षित हुई । आनन्द ने हाथ जोडकर सूर्य विमान की प्रतिमाओंकों लक्ष्यकर नमस्कार किया और अपने मन्दिर में अनेक चमकीले रत्नों का विमान बनवाकर उसमें रत्नमयी प्रतिमाएं विराजमान की। जिन्हें वह सूर्य विमान की प्रमिताओं की कल्पनाकर प्रतिदिन

भक्ति से नमस्कार करता था। उस समय बहुत से लोगों ने राजा आनन्दका अनुकरण किया था । उसी समय ये भारतवर्ष में सुर्य नमस्कार की प्रथा चल पडी थी । राजा आनन्दने बहुत समय तक पृथिवी का पालन किया । एक दिन उसे अपने शिर में सफेंद बाल के देखने से वैराग्य उत्पन्न हो आया जिससे वह अपना विशाल राज्य ज्येष्ठ पुत्र को सौपकर किन्हीं समुद्रदत्त नामके मुनिराज के पास दीक्षित हो गये । उन्हींके पास रहकर उसने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यकचारित्र और तप इन चार आराधनाओं की अराधना की। ग्यारह अंगो का ज्ञान प्राप्त किया और विशुध्द ह्रदयसे दर्शन विशुध्दि आदि सोलह भावनाओंका चिन्तवन कर तीर्थकर नामक पुण्य का बन्ध किया । एक दिन मुनिराज आनन्द प्रायोपगमन सन्यास लेकर निराकुल रुप से क्षीर नामके बन में बैठे हुए थे। कमठ का जीव भी नरक से निकलकर उसी बनमें सिंह हुआ था। ज्योंही उसकी दृष्टी मुनिराज पर पडी त्योंही उसे पूर्वभव के संसार से प्रचण्ड क्रोध आ गया।

उसने अपनी पैनी दांतोसे आनन्द मुनिराज का गला पकड लिया । सिंह-कृत उपसर्ग सहनकर मुनिराज आनत स्वर्ग के प्राणत नामके विमान में इन्द्र हुए । वहां उनकी आयु बीस सागर की थी, साढे तीन हाथ का शरीर था । शुक्ल लेश्या थी, वह दश माह बाद श्वास लेता और बीस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार ग्रहण करता था। उसे जन्मसे ही अवधिज्ञान प्राप्त था इसलिये वह पांचवें नरक तक की बातोंको स्पष्ट जान लेता था । अनेक देव देवियां उसकी सेवा करती थी। यही अहमिन्द्र आगे के भव से भगवान पार्श्वनाथ होगा । कहां ? सो सुनिये :-

(२) वर्तमान परिचय

जम्बू द्वीप के भरतक्षेत्र में काशी नामका विशाल देश है। उसमें अपनी शोभा से अलकापुरीको जीतने वाली एक बनारस नामकी नगरी है । बनारस के समीप ही शान्त-सिमिति गती से गंगा नदी बहती है । वह अपनी धवल तरंगो से किनारेपर बने हुए मकानों को सींचता हुई बडी ही भली मालूम होती है । उसमें काश्यप गोत्रीय राजा विश्वसेन राज्य करते थे । उनकी पटरानीका नाम ब्रह्मा देवी था । दोनों राजदम्पति इन्द्र इन्द्राणी की तरह मनोहर सुख भोगते हुए आनन्दसे समय बिताते थे । ऊपर जिस इन्द्र इन्द्राणी की तरह मनोहर सुख भोगते हुए आनन्दसे समय बिताते थे। ऊपर जिस इन्द्र का कथन कर आये है वहांपर जब उसकी आयु केवल छह माह की बाकी रह गई तब से राजा विश्वसेन के घरपर देवोंने रत्नोंकी वर्षा करनी शुरु कर दी। और अनेक देवियां आकर महारानी ब्रह्मदेवी की सेवा

करने लगी जिससे उन्हे निश्चय हो गया कि यहां किसी महापुरुष तीर्थंकरका जन्म होने वाला है ।

बैशाख कृ ष्ण द्वितीया के दिन विशाखा नक्षत्र में रात्रि के पिछले पहरमें रानीने सुर कुं जर आदि सोलह स्वप्न देखे और स्वप्न देखने के बाद ही मुहमें प्रवेश करते हुए एक मत्त हाथी को देखा । उसी समय मरुभूति के जीव इन्द्रने स्वर्ग वसुन्धरा से सम्बन्ध तोडकर उनके गर्भ में प्रवेश किया । सबेरा होते ही रानी ने नहा धोकर प्राणनाथ से स्वप्नों का फल पुछा तब उन्होंने हंसते हुए कहा कि आज तुम्हारे गर्भ में तेईसवें तीर्थंकर ने अवतार लिया है । नौ माह बाद उनका जन्म होगा । यह रत्नों की वर्षा, देवकुमारियों की सेवा और स्वप्नों का देखना उन्हींका माहात्म्य प्रभाव प्रकट कर रहे है । पतिदेव के वचन सुनकर ब्रह्मादेवी को इतना अधिक हर्ष हुआ कि मारे आनन्द के उसके सारे शरीर में रोमांच निकल आये। उसी समय देवोंने आकर राजदम्पति का खूब सत्कार किया, स्तुति की और स्वर्गसे साथमें लाये हुए वस्त्र-आभूषण प्रदान किये ।

नौ माह उसने पौष कृष्ण एकादशी के दिन अनिल योगमें पुत्र-रत्न को उत्पन्न किया । पुत्रके उत्पन्न होते ही सब ओर आनन्द ही आनन्द छा गया । उसी समय सौधर्म इन्द्र आदि देवोंने मेरु पर्वत पर ले जाकर उनका जन्माभिषेक किया । और भगवान् पार्श्वनाथ नाम रक्खा। वहांसे वापिस आकर इन्द्रने उन्हें माता के लिये सौंप दिया और भक्ति से गद्गद् हो ताण्डव आदि का प्रदर्शन कर जन्म-कल्याणक का महोत्सव किया । उत्सव समाप्त होनेपर देव लोग अपने अपने स्थानोंपर चले गये ।

राज परिवार में बालक पार्श्वनाथ का योग्य रीति से लालन-पालन हुआ । भगवान नेमिनाथ के मोक्ष जाने के बाद तिरासी हजार सात सौ पचास वर्ष बीत जानेपर पार्श्वनाथ स्वामी हुए थे । इनकी सौ वर्ष की आयु भी इसीं में शामिल है । इनके शरीर की ऊंचाई नौ हाथ की थी और रंग हरा था । इनकी उत्पत्ति उग्रवंश में हुई थी । भगवान पार्श्वनाथ ने धीरे धीरे बाल्य अवस्था व्यतीत कर कुमार अवस्था में प्रवेश किया और फिर कुमार अवस्था को पार कर यौवन अवस्था के पास पहुंचे।

सोलह वर्ष के पार्श्वनाथ कसी एक दिन अपने इष्ट मित्रों के साथ वन में क्रिडा करने के लिये गये हुये थे। वहांसे लौटकर जब वे घर आ रहे थे तब उन्हें मार्गमें किनारेपर पंचाग्नि तपता हुआ एक पसाधु मिला। वह साधु ब्रह्मादेवी का पिता अर्थात् भगवान् पार्श्वनाथ का मातामह(नाना) था। अपनी स्त्री विरह से दु:खी होकर

वहां पंचाग्नि तपने लगा था । उसका नाम महीपाल था। कमठ का जीव सिंह आनन्द मुनिराज की हत्या करने से मरकर नरक में गया था । वहांसे निकलकर अनेक कुयोनियों में घूमता हुआ वही यह महीपाल तापस हुआ था। भगवान पार्श्वनाथ और उनका मित्रा सुभौम कुमार बिना नमस्का र किये ही उस तापसके सामने खडे हो गये । तापस को इस आचरण से बहुत बुरा मालूम हुआ। वह सोचने लगा मुझे अच्छे अच्छे राजा महाराजा तो नमस्कार करते है पर ये आज कल के छोकरे कितने अभिमानी है । खैर ! .....यह सोचकर उसने बुझती हुई अग्नि को प्रदीप्त करने के लिये कुल्हाडी से मोटी लकडी काटनी चाही । भगवान् पार्श्वनाथने अवधिज्ञानसे जानकर कहा कि बाबाजी ! आप इस लकडीको नही काटिये इसके भीतर दो प्राणी बैठे हुए है जो कुल्हाडी के प्रहार से मर जावेंगे । इसी बीचमें इनके मित्रा सुभौम कुमार ने उसके बालतप-अज्ञानतप की खूब निन्दा की और पंचाग्नि तपने से हांनियां बतलाई । सुभौम के बचन सुनकर तापसने झल्लाते हुये दोनोंके प्रति बहुत कुछ रोप प्रकट किया और कुल्हाडी मारकर लकडी के दो टूकडे कर दिये । कुल्हाडी के प्रहार से लकडी में रहने वाले सर्प और सर्पिणी के भी दो दो टूकडे हो गये । उनके भग्न टुकडे व्याधिसे तडफडा रहे थे। पार्श्वनाथ स्वामीने कुछ उपाय न देखकर उन सर्प सर्पिणी को शान्त होने का उपदेश दिया और पंच नमोकार मन्त्र सुनाया उनके उपदेश से शान्तचित्त होकर दोनोंने नमोकार मन्त्र का धन किया जिसके प्रभाव से वे दोनों महा विभूति के धारक धरणेन्द्र और पद्मावती हुए । बहुत समझानेपर भी जब उस महीपाल तापसने अपनी हठ नहीं छोडी तब वे मित्रोंके साथ अपने घर लौट आये । महीपाल तापस को भी अपने इस अनादरसे बहुत दु:ख हुआ। जिससे आर्तध्यान से मरकर संवर नाम का ज्योतिषी देव हुआ ।

जब भगवान पार्श्वनाथ की आयु तीस वर्ष क ी हो गई तब अयोध्या नगर के स्वामी राजा जयसेन ने उन्हें उत्तमोत्तम भेंट देनेके लिये किसी दूतको भेजा । कुमार पार्श्वनाथ ने बडी प्रसन्नता से उसक भेंट स्वीकार की और दूत का खूब सम्मान किया। मौका पाकर जब उन्होंने दूतसे अयोध्या का समाचार पूछा तब दूतने पहले यहांपर उत्पन्न हुये वृषभनाथ आदि तीर्थकरों का वर्णन किया । राजा रामचन्द्र, लक्ष्मण आदि की वीर चेष्टाओंका व्याख्यान किया और फिर शहर की शोभा का निरुपण किया। दूतसे मुखसे तीर्थकरों का हाल सुनकर उन्होंने सोचा कि मै भी तीर्थकर कहलाता हूं। पर इस थोते पद से क्या ? मैंने सचमुच में एक सामान्य मनुष्य की तरह अपनी आयु के तीस वर्ष यूंही गमा दिये । इस प्रकार विचार करते

हुये उन्हें आत्म ज्ञान प्राप्त हो गया जिससें उन्होंने विषयवासनाओं से मोह छोडकर दीक्षा लेने का पक्का निश्चय कर लिया। उन्हे दीक्षा लेने के लिये तत्पर देखकर राजा विश्वसेन आदिने बहुत कुछ समझाया पर उन्होंने किसी की एक न मानी । उसी समयव लौकान्तिक देवोंने आकर दीक्षा-कल्याणक का उत्सव मनाया । भगवान पार्श्वनाथ अनेक राजकुमारियों के आज्ञा बन्धन तोडकर देवनिर्मित विमला पालकी पर सवार होकर अश्वबन में पहुंचे और वहां तेला का नियम लेकर तीन सौ राजाओंके साथ पौष कृष्ण एकादशी के दिन सबेरे के समय दीक्षित हो गये। बढती हुई विशुध्दि के कारण उन्हें दीक्षा लेते ही मन:पर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया था । दीक्षा - कल्याणक का उत्सव समाप्त कर देव लोग अपने अपने स्थानोंपर चले गये।

चौथे दिन भगवान ने आहार लेनेके लिये गुलम खेटपुर में प्रवेश किया । वहां उन्हें धन्य नामक राजाने विधीपूर्वक उत्तम आहार दिया। आहार से प्रभावित होकर देवोंने धन्य राजा के घरपर पंचाश्चर्य प्रकट किये। आहार से प्रभावित होकर देवोंने धन्य राजा के घरपर पंचाश्चर्य प्रकट किये । आहार लेकर भगवान् पुन: बनमें आक ार विराजमान हो गये । इस तरह कभी प्रतिदिन कभी दो-चार, छह आदि दिनोंके बाद आहर लेते और आत्मध्यान करते हुए उन्होंने छद्मस्थ अवस्था के चार माह व्यतीत किये । फिर वे उसी दीक्षा वनमें आम्रवृक्षके नीचे सात दिन के अनशन की प्रतिज्ञा लेकर ध्यानमें मग्न हो गये । जब वे ध्यान में मग्न होकर अचल की तरह निश्चल हो रहे थे उसी समय कमठ-महीपाल का जीव कालसंबर नामका ज्योतिषी देव आकाश मार्ग से बिहार करता हुआ वहांसे निकला । जब उसका विमान मुनिराज पार्श्वनाथ के ऊपर आया तब वह मन्त्र से कीलित हुए ती तरह अकस्मात् रुक गया । जब कालसंवर ने उनका कारण जानने के लिये यहां वहां नजर दौडाई तब उसे ध्यान करते हुए भगवान् पार्श्वनाथ दीख पडे । उन्हें देखते ही उसे अपने बैरकी याद आ गई जिससे उसने क्रुध्द होकर उनपर घोर उपसर्ग करना शुरु कर दिया । सबसे पहले उसने खूब जोरका शब्द किया और फिर लगातार सात दिनतक मूसलधार पानी बरषाया, ओले बरषाये और वज्र गिराया । पर भगवान पार्श्वनाथ कालसंबर के उपसर्ग से रंचमात्र भी विचलित नहीं हुए। इनके द्वारा दिये गये नमस्कार मन्त्रके प्रभावसे जो सर्प, सर्पिणी, धरणेन्द्र और पद्मावती हुए थे, उन्होंने अवधिज्ञान से अपने उपकारी पार्श्वनाथ के ऊपर होनेवाले घोर उपसर्ग का हाल जान लियां । जिससे वे दोनों घटना स्थलपर पहुंचे और वहा भगवान पार्श्वनाथ को उस प्रचण्ड घनघोर वर्षा के मध्य में मेरु की तरह अविचल

देखकर आश्चर्य से चकित हो गये । उन दोनोंने उन्हें अपने ऊपर उठा लिया और उनके शिरपर फणावली तान दी । जिससे उन्हें पानी का एक बूंद भी नहीं लग सकता था। उसी समय ध्यान के माहात्म्यस घातिया कर्मोंका नाश कर उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया । भगवान के अनुपम धैर्य से हार मानकर संबरदेव बहुत ही लज्जित हुआ। उसी समय उसकी कषायों में कुछ शान्ती आ गई। जिससे वह पहले का समस्त बैरभाव भुलाकर क्षमा मांगने के लिये उनके चरणों में आ पडा। उन्होंने उसे भव्य उपदेश से सन्तुष्ट कर दिया । भगवान पार्श्वनाथ को चैत्र कृष्ण चतुर्थी के दिन केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। केवलज्ञान प्राप्त होते ही समस्त देवोंने आकर उनका ज्ञान-कल्याण क किया । कुबेरने समवशरण की रचना की । उसके मध्य में स्थित होकर उन्होंने चार माह बाद मौन भंग किया -दिव्य ध्वनि के द्वारा समस्त पदार्थोंका व्याख्यान किया। उनके समय में जगह जगहपर वैदिक धर्मका प्रचार बढा हुआ था, इसलिये उन्होंने प्राय: सभी आर्य क्षेत्रो में घूम-घूमकर उसका विरोध किया और जैन धर्म का प्रचार किया था ।

भगवान् पार्श्वनाथ के समवशरणमें स्वयम्भुवि आदि दश गणधर थे, तीन सौ पचास द्वादशांग के जानकर थे, दश हजार नौ सौ शिक्षक थे, चौदह सौ अवधिज्ञानी थे, सात सौ पचास मन:पर्यय ज्ञानी थे, एक हजार केवलज्ञानी थे, इतने ही विक्रिया ऋध्दि के धारक थे, और छह सौ वादी थे । इस तरह सब मिलाकर सोलह हजार मुनिराज थे। सुलोचना आदि को लेकर छत्तीस हजार आर्यिकाएं थी, एक लाख श्रावक थे तीन लाख श्राविकाएं, असंख्यात् देव देवियां और संख्यात तिर्थच थे ।

इन सबके साथ उन्होंने उनहत्तर वर्ष सात माहतक विहार किया। उस समय इनकी बहुत ही ख्याति थी । हठवादी इनकी युक्तियोंसे बहुत डरते थे। जब इनकी आयु एक माह की बाकी रह गई तब वे छत्तीस मुनियोंके साथ योग निरोध कर सम्मेद शैलपर विराजमान हो गये । और वहां से उन्होंने श्रावण शुक्ला सप्तमीक दिन विशाख नक्षत्रमें सबेरे के समय अघातिया कर्मो का नाशकर मोक्ष लाभ किया। देवोंने आकर भक्तिपूर्वक निर्वाण-कल्याणक का उत्सव किया । भगवान् पार्श्वनाथ के सर्प का चिन्ह था ।

भगवान महाविर

दिढ कर्माचल दलन पवि, भवि सरोज रविराय ।

कंचन छ्वि कर जोर कवि, नमत वीर जिनपाय ।। -भूधरदास

(१) पूर्वभव वर्णन

सब द्वीपोंमें शिरमौर जम्बू द्वीप के विदेह क्षेत्र में सीता नदी के उत्तर तट पर एक पुष्कलावती देश है उस में अपनी स्वाभाविक शोभा से स्वर्गपुरी को जीतनेवाली पुण्डरीकिणी नगरी है । उसके मधु नामके वन में किसी समय पुरुरवा नामका भिलों का राजा रहता था। वह बडा ही दृष्ट था - भोले जीवों को मारते हुए उसे कभी दया नही आती थी । पुरुरवा की स्त्रीका नाम कालिका था। दोनों स्त्री-पुरुषोंमें काफी प्रेम था । किसी एक दिन रास्ता भूलकर सागरसेन नाम के मुनिराज उस वनमें इधर उधर फिर रहे थे । उन्हें देखकर पुरुरवा हरिण समझकर मारने के लिये तैयार हो गया परन्तु उसकी स्त्री कालिका ने उसे उसी समय रोक दिया और कहा कि ये वनके अधिष्ठाता देव है, हरिण नही है, इन्हें मारनेसे संकट में पड जाओगे । स्त्री के कहने से प्रशान्तचित्त होकर वह मुनिराज सागरसेन के पास पहुंचा और नमस्कार कर उनके पास बैठ गया। मुनिराजके कहने से जीवनभर के लिये मद्य, मांस और मधु का खाना छोड. दिया । रास्ता मिलनेपर मुनिराज अपने वांछित स्थान की ओर चले गये। और प्रसन्नचित्त पुरुरवा अपने घर को गया । वहां वह निर्दोष रुपसे अपने ब्रतका पालन करता रहा और आयु के अन्त में शान्त परिणामों से मरकर सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ। वहां उसकी आयु एक सागर की थी। स्वर्गके सुख भोगकर जम्बू द्वीप भरत क्षेत्र की अयोध्या नगरी के राजा भरत चक्रवर्ती की अनन्तमति नामक रानी से मरीचि नामका पुत्र हुआ । जब वह पैदा हुआ थाउस समय भगवान् वृषभदेव गृहस्थ अवस्था में ही थे और महाराज नाभिराजभी मौजुद थे इसलिये उसके जन्मका खूब उत्सव मनाया गया था। जब वह बडा हुआ तब अपने पितामह भगवान् वृषभदेव साथ देखा-देखी मुनि हो गया। उस समय और भी कुछ् महाकच्छ् आदि चार हजार राजा मुनि हो गये थे पर वे सभी भूख प्यास की बाधा से दु:खी होकर भ्रष्ट हो गये थे । वह मरीचि भी मुनि-पद से पतित हो जंगलोंमें कन्दमूल खाने और तालाबों में पानी पीने के लिये गया तब वनदेवताने प्रकट होकर कहा कि। यदि तुम यति वेष में रहकर यह अनाचार करोगे तो हम तुम्हें दण्डित करेंगे। देवताओं के वचन सुनकर उसने वृक्षों के बल्कल पहिनकर दिगम्बर वेष को छोड दिया ओर मनमानी प्रवृत्ति करने लगा । उसने कपिल आदि बहुतसे अपने अनुयायी शिष्य बनाकर उन्हें सांख्य मतका उपदेश दिया ।

जब भगवान आदिनाथ न समवसरण के मध्य में विराजमान होकर दिव्य उपदेश दिया तब उन पतित साधुओं में बहुत से साधु पुन: जैन धर्म में दीक्षित हो

गये। पर मरीचिने अपना हठ नही छोडा। वह हमेशा यही करता रहा कि जिस तरह आदिनाथ ने एकमत चलाकर ईश्वर-पदवी प्राप्त की है उसी तरह मै भी अपना मत चलाकर ईश्वर-पदवी प्राप्त करुंगा। इस तरह वह कन्दमूल का भक्षण करता, शीतल जलसे स्नान करता, वृक्षोंके बल्कल पहिनता और सांख्यमत का प्रचार करता हुआ यहां वहां घूमता रहा। आयु के अन्त में कुछ शान्त परिणामोसे मरकर पांचवे स्वर्गमें देव हुआ । वहां उस की आयु दश सागर की थी। आयु पूर्ण होनेपर वह वहां से चयकर साकेत नगरके कपिला ब्राह्मण की काली नामक स्त्रासे जटिल नामका पुत्र हुआ। जब वह बडा हुआ तब उसने परिव्राजक-सांख्य साधु की दीक्षा लेकर पहलेके समान सांख्य तत्वौ का प्रचार किया । और आयुके अन्तमें मरकर सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ। वहां दो सागरतक दिव्य सुखोंका अनुभव कर इसी भरतक्षेत्र के स्थूणागार नगरमें भारद्वाज ब्राह्मण के घर उसकी पुष्पदत्ता भार्या से पुष्पमित्र नाम का पुत्रा हुआ। वहां भी उसने परिब्राजक की दीक्षा लेकर सांख्य तत्वों का प्रचार किया और शान्त परिणामों से मरकर सौधर्म स्वर्ग में देव का पद पाया । वहां उस की आयु एक सागर प्रमाण थी। वहां से सुख भोगने के बाद वह जम्बू द्वीप भरक्षेत्र के सूतिका नगर में अग्निभूती ब्राह्मणकी गौतमी स्त्री से अग्निसह नाम का पुत्र हुआ। पूर्व भवके संस्कार से उसने पुन: परिब्राजक की दीक्षा लेकर प्रकृति आदि पच्चीस तत्वों का प्रचारा किया और कुछ समता भावों से मर कर सनत्कुमार स्वर्ग में देव हुआ। वहां पर वह सात सागर तक सुन्दर सुख भोगता रहा । फिर आयु पूर्ण होने पर इसी भरत क्षेत्र के मन्दिर नामक भार्या से भारद्वाज नामका पुत्र हुआ । वहांभी उसने त्रिदण्ड लेकर सांख्यातम का प्रचार किया तथा आयुके अन्त में समता भावों से शरीर त्यागकर माहेन्द्र स्वर्ग में देव हुआ। वहां वह सात सागर तक दिव्य सुखोंका अनुभव करता रहा। बादमें वहांसे च्युत होकर कुधर्म फैलाने के खोटे फलसे अनेक त्रास स्थावर योनियों में घूम-घूम के दु:ख भोगता रहा । फिर कभी मगध (बिहार) देश के राजगृह नगरमें शाण्डिख्य विप्र की पाराशरी स्त्री से स्थावर नामका पुत्र हुआ । सो वह भी बडा होनेपर अपने पिता शण्डिल्य की तरह वेद-वेदांगोंका जानने वाला हुआ । पर सम्यग्दर्शन के बिना उसका समस्त ज्ञान निष्फल था। उसने वहांपर भी परिब्राजककी दीक्षा लेकर सांख्य मतका प्रचार किया और आयुके अन्तमें मरकर माहेन्द्र स्वर्गमें देव-पदवी पाई।